कौटिल्य नीतियों की वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ० देवेन्द्र कुमार
असि. प्रोफेसर एवं अध्यक्ष–संस्कृत विभाग
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय अलीगढ़

सारांशिका

साहित्य समाज का दर्पण है। यही वह सशक्त माध्यम है, जो नैतिकता के संदेश को जन–जन तक पहुंचाता है। नीति जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाती है, यह मानव को असत्य से सत्य, कुमार्ग से सन्मार्ग एवं आज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाती हैं। संस्कृत साहित्य अमूल्य ज्ञान–विज्ञान का भण्डार है। आचार्य कौटिल्य एक ऐसी महान् विभूति थे, जिन्होंने अपनी विद्वत्ता एवं क्षमताओं के बल पर भारतीय इतिहास की धारा को बदल दिया। मौर्य साम्राज्य के संस्थापक कौटिल्य प्रकाण्ड विद्वान, दार्शनिक, कुशल राजनीतिज्ञ, चतुर कूटनीतिज्ञ एवं अर्थशास्त्री के रूप में विश्वविख्यात थे। जो नीति–मन्त्रों से साम्राज्य का विनाश एवं निर्माण कर सकता है, उसकी नीतियाँ एवं दर्शन कितना महत्वपूर्ण होगा, इस बात का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। उन्होंने उपदेशों के माध्यम से ऐसे विलक्षण दर्शन का प्रतिपादन किया, जिसके आचरण से मानव जीवन में सार्थकता, तेजस्विता एवं कर्मशीलता का समावेश होता है।

मुख्य शब्द : साहित्य, कौटिल्य नीतियाँ, नैतिकता, दर्शन, कूटनीतिज्ञ।

पं० शामशास्त्री ने सर्वप्रथम कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' की दुर्लभ पाण्डुलिपियों को सन् 1905 में संसार के समक्ष प्रस्तुत किया। लौकिक एवं पारलौकिक कल्याण पथ को प्रशस्त करने वाले इस ग्रन्थ को आचार्य कौटिल्य ने कुल 15 अधिकरणों, 150 अध्यायों एवं 180 प्रकरणों में निबद्ध किया है। ग्रन्थ के आरम्भ में आचार्य कौटिल्य का स्पष्ट कथन है कि पृथ्वी की प्राप्ति एवं उसकी रक्षा के लिए पूर्ववर्ती प्राचीन आचार्यों ने जितने भी अर्थशास्त्र विषयक ग्रन्थों का निर्माण किया है, उन सभी का सार संकलन करके इस 'अर्थशास्त्र' की रचना की गयी है। आचार्य कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के दूसरे अधिकरण में 'शासनाधिकार' प्रकरण में इस तथ्य की घोषणा स्वयमेव की है कि समस्त शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन करके और उनके प्रयोगों की अच्छी तरह परीक्षा करके महाराज (चन्द्रगुप्त मौर्य) के लिए इस अर्थशास्त्र रूपी शासनविधि का निर्माण किया गया हो।

कौटिल्य चार प्रकार की विधाएँ मानते हैं–आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता एवं दण्डनीति। आन्वीक्षिकी सम्पूर्ण जगतका कल्याण करने वाली एक ऐसी विद्या है, जिसके प्रकाश में सभी विधाएँ प्रकाशित होती है। उन्होंने इसे ''प्रदीपः सर्वविद्यानाम्'' कहकर इसकी उपयोगिता का प्रतिपादन किया है। यह विद्या लौकिक–अलौकिक समस्त कार्यों की उपकारिका होने से सभी धर्मों का आश्रय मानी गयी है। सुख–दुख में बुद्धि को स्थिर करती हुई, व्यक्ति को सोचने–समझने बोलने तथा कार्य करने में सक्षम बनाती है। इसके प्रकाश से मिथ्या ज्ञान नष्ट हो जाता है, जिससे हिंसा, चोरी, काम, क्रोध, लोभ आदि पापात्मक प्रवृत्तिया निरुद्ध हो जाती है। वस्तुतः विभिन्न युगों में समाज में संस्कार, शिक्षा, नीति, व्यवसाय, खान–पान आदि का निर्देश धर्म के ऐसे अनुशासनों द्वारा होता आया है, जो आन्वीक्षिकी विद्या के अन्तर्गत आते हैं।

आचार्य कौटिल्य का उद्देश्य एक ऐसे विराट् साम्राज्य की स्थापना करना था, जिसकी शासनसत्ता सर्वथा सुरक्षित एवं सब प्रकार से स्वतंत्र हो, जिसके अतुल बल–वैभव के समक्ष किसी को भी सिर उठाने का साहस न हो, किन्तु कौटिल्य की निरंकुश नीति में भी प्रजातंत्री विचारों का आश्चर्यजनक समन्यय दृष्टिगोचर होता है। उनका मानना है कि राजा का सर्वप्रथम कर्तव्य है –प्रजा को प्रसन्न रखना। प्रजा के सुख में राजा का सुख और प्रजा के हित में राजा का हित है–'प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।'' राज्य की सर्वोच्च शक्ति के रूप में उन्होंने एक ऐसे राजा की कल्पना की थी, जो सदाचार एवं सच्चरित्रता की प्रतिमूर्ति हो। क्योंकि प्रजा राजा के चरित्र का अनुकरण करती है– यथा राजा तथा प्रजा।

सदाचरण के लिए इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना परमावश्यक है। इन्द्रियजय के मार्ग में आने वाली सबसे बड़ी बाधा कामादि 6 शत्रुओं का संवर्ग है, जिसे 'अरिषड्वर्ग' भी कहा जाता है। काम, क्रोध, लोभ, मान, मद तथा हर्ष। ये आन्तरिक शत्रु मानव को उद्वेजित करके अधर्म और दुराचरण की ओर प्रेरित करते हैं। ऐसा होने पर समाज में मत्स्यन्याय होगा अर्थात् बलवान् निर्बल को निगल जायेगा। धर्म अर्थात् कर्तव्य और सदाचार की अवरोधक प्रवृत्तियों का दमन आवश्यक है, जो इन्द्रियजय से सम्भव है।

कोटित्य के मत में आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता एवं दण्डनीति ये चारों विद्याएँ वृद्धजनों की संगति की अपेक्षा रखती है, क्योंकि वृद्धपुरुषों को सिद्धान्त के साथ ही व्यवहार ज्ञान का भी अनुभव होता है। चतुर्विध विद्याओं में 'दण्डनीति' शेष तीन विद्याओं का मूल है, दण्डनीति का मूल विनय (विद्या) है क्योंकि शिक्षित व्यक्ति के द्वारा विवेकपूर्ण रीति से प्रयुक्त दण्ड प्रजा के 'योगक्षेम' की सिद्धि में सहायक होता है। कृत्रिम एवं स्वाभाविक के भेद से विनय दो प्रकार का है। मानवीय गुणों के सम्यक् विकास के लिए विद्यार्जन अत्यावश्यक है, किन्तु विद्या भी सुपात्र को ही सुशिक्षित एवं सुयोग्य बनाती है, अपात्र को नहीं। अतः विद्या की प्राप्ति के लिए वृद्धजनों की संगति के साथ ही पात्रता भी

आवश्यक है। पात्रता का तात्पर्य गुरुजनों अथवा वृद्धजनों में श्रद्धा एवं भक्ति रखते हुए उनकी बातों को ध्यानपूर्वक सुनना, सुनी हुई बात को अच्छी तरह ग्रहण करना, ग्रहण किये गये तथ्य को मन में धारण करना, मन में धारण की गयी ज्ञानराशि को आत्मचिन्तन द्वारा विशिष्ट रूप प्रदान करना, इस विशिष्ट ज्ञान अथवा विज्ञान को तर्क–वितर्क की कसौटी पर बार–बार कसकर विवेकपूर्ण व्यवहार में लाना है। इन योग्यताओं से युक्त सुपात्र ही विद्या को ग्रहण करने के योग्य होता है।

कौटिल्य का मानना है कि परस्त्री, परधन और हिंसादि कार्यों से सदा दूर रहना चाहिए। संतुष्ट व्यक्ति को धन–मान से सत्कृत करना चाहिए अर्थात् संतुष्ट व्यक्ति कभी भी नकारात्मक नहीं होता। वह सदैव सकारात्मक रहते हुए सहयोग की भावना रखता है। अतः ऐसे व्यक्ति का सदैव यथाशक्ति धन एवं मधुर व्यवहार आदि के द्वारा उसका आदर सत्कार करना चाहिए। किन्तु जो असंतुष्ट है, उसे आप कितना भी कुछ भी दोगे फिर भी वह कभी संतुष्ट और सकारात्मक नहीं होता है, उसके मन में कभी भी सहयोग की भावना नहीं आती है। ऐसे असंतुष्ट को साम, दाम, दण्ड, भेद से अपने वश में करना चाहिए–

तुष्टानर्थमानाभ्यां पूजयेत्। अतुष्टान् सामदानभेददण्डैः साधयेत्।

गुप्त रहस्यों को इस प्रकार छिपाना चाहिए, जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को छिपाये रखता है–

'गुहेत कूर्म इवाङ्गानि। मनुष्य को परिश्रम करना चाहिए, अनुद्योगी नहीं होना चाहिए, प्रिय, मित एवं हितकारी बातें कहनी चाहिए– प्रियहितं ब्रूयात्। मित्र ऐसे हों, जो वंशपरम्परागत हों, स्थायी हों, अपने वश में रह सकें, जिनसे विरोध की सम्भावना न हो, प्रभु, मन्त्र, उत्साह आदि शक्तियों से सम्पन्न हों, जो समय आने पर सहायता कर सकें। जो सुख और दुख में सदैव आपके साथ कंधे से कंधा मिलाकर स्थिर हो सके–

'पितृपैतामहं नित्यं वश्यमद्वैध्यं महत् लघुसमुत्थमिति मित्रसम्पत्।

शत्रु के आश्रय से आया हुआ व्यक्ति, शत्रु सहवास के कारण बड़ा जहरीला होता है. अतः शत्रु सहवास साँप के सहवास के समान है।

'सर्पसंवासधर्मित्वान्नित्योद्वेगेन दूषितः।

मूर्ख लोगों से न विवाद करें और न ही मित्रता। दुष्ट व्यक्ति 'पयमुखविषकुम्भ' के समान त्याज्य है अर्थात् जो व्यक्ति परोक्ष में काम बिगाड़ता है किन्तु सामने आने पर मीठी–मीठी बाते बनाता है, ऐसे मित्र को मुख पर दूध लगे किन्तु विष से भरे घड़े के समान छोड़ देना चाहिए।'' जो व्यक्ति अपने गुप्त विचारों या मंत्रणाओं को छिपाकर नहीं रख सकता, वह उन्नतावस्था में पहुँचकर भी नीचे गिर जाता है। समुद्र में नाव के टूट जाने पर जो दशा उसमें सवार की होती है, वही दशा मंत्र के फूट जाने पर राजा की होती है।

बिना सोचे–विचारे कार्य करने वाला व्यक्ति कभी फलता–फूलता नहीं है–

'यत्किंचनकारी न किंचिदासादयति ।''

धर्म, अर्थ, और काम इन तीनों का पारस्परिक सम्बन्ध बताते हुए कौटिल्य ने स्वीकार किया है कि इनमें प्रमुखता अर्थ की है और शेष दोनों धर्म और काम अर्थ पर ही निर्भर हैं–

'अर्थ एवं प्रधान इति कौटिल्यः। अर्थमूलौ हि धर्मकामाविति।''

विपत्ति काल के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए–आपदर्थे धनं रक्षेत्।

अर्थप्राप्ति में भाग्य एवं पुरुषार्थ दोनों का योगदान रहता है। धन का व्यय बहुत सोच समझकर करना चाहिए। अति से बचना चाहिए अति सर्वत्र वर्जयेत्। माता, पिता, गुरु पूज्य है। विद्यार्जन परमावश्यक है। बिना अभ्यास के विद्या विष के समान एवं अजीर्ण भोजन विष के समान है।

'अनभ्यासे विषं विद्या अजीर्णे भोजनं विषम्।

काम और क्रोध से उत्पन्न सप्त व्यसन अनर्थकारी हैं, इसलिए इनसे बचना चाहिए।

निष्कर्षः कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट जीवन–दर्शन वर्तमान परिस्थितियों में अत्यन्त उपादेय, महत्त्वपूर्ण एवं प्रासंगिक हैं। इसका उद्देश्य सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं व्यावहारिक जीवन में आने वाली बुराइयों को दूर करना है। मानव एक सामाजिक प्राणी है। जीवन के विभिन्न पक्षों में मानव के लिए क्या कर्त्तव्य है, क्या अकर्त्तव्य है, उसके लिए कैसा आचरण उचित है और कैसा अनुचित है, क्या श्रेय है, क्या प्रेय है, क्या हेय है क्या उपादेय, जीवन को सुखी एवं समृद्ध बनाने के लिए क्या करना चाहिए इत्यादि सभी बातों का ज्ञान प्राप्त होता है।

राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, विधिशास्त्र, वाणिज्यशास्त्र, दण्डनीति, अर्थशास्त्र आदि विषयों की सामग्री से ओत–प्रोत संस्कृत भाषा में लिखा गया यह ग्रन्थ बौद्धिक प्रयोगों, कूटनीतिक युक्तियों, राज्य की सुरक्षा के उपायों तथा प्रजा को सुखी एवं समृद्ध बनाने के उपायों का विश्वकोश है। समग्र रूप में यह दर्शन है। जिसके बल पर सैन्यशक्ति एवं राजकीय संसाधनों से रहित आचार्य कौटिल्य ने नंदवंश जैसे विशाल साम्राज्य को समूल नष्ट करके मौर्य साम्राज्य की स्थापनापूर्वक एक साधारण बालक चन्द्रगुप्त को सम्राट के पद पर अभिषिक्त किया। बुद्धि के चतुर्मुखी विकास के साथ–साथ अर्थशास्त्र से व्यक्ति को एक विशिष्ट एवं सुरक्षित जीवन जीने की कला एवं तकनीक की शिक्षा प्राप्त होती है।

सन्दर्भ सूची :

1. पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम्।
   (कौटिलीय अर्थशास्त्रम् 1.1.1. पृ० 1)
2. सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च।
   कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः।।
   (वही, 2,26,10,पृ0–150)
3. वही, 1.1. 1. पृ० 11
4. वही, 1, 14, 18, पृ० 77
5. तस्मादरिषड्वर्गत्यागेनेन्द्रियजयं कुर्वीत।
   (वही, 1, 3, 6, पृ० 23)

6. तस्माद् दण्डमूलास्तिस्रो विद्याः।
विनयमूलो दण्डः प्राणभृतां योगक्षेमावहः।।
(वही, 1, 2, 4, पृ० 18)
7. शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणाविज्ञानोहापोह
तत्वाभिनिविष्टबुद्धिं विद्या विनयति नेतरम्।
(वही, 1, 2, 4, पृ० 18)
8. परस्त्रीद्रव्यहिंसाश्च वर्जयेत्।
(वहीं, 1, 3, 6, पृ० 23)
9. वही, 1. 8. 12. पृ0–47
10. वही 1, 10. 14, पृ० 58
11. वही, 1, 15, 18, पृ० 78
12. वही, 5, 92, 4, पृ0–520
13. वही, 6, 96, 1, पृ० 538
14. वही, 7, 111, 6. पृ० 588
15. परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।।
(चाणक्य नीति, 2. 5. पृ0– 9)
16. अंसवृतस्य कार्याणि प्राप्तान्यपि विशेषतः।
निस्संशयं विपद्यन्ते भिन्नप्लव इवौदधौ ।।
(कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 7, 117, 13. पृ० 637)
17. वही, 7. 116, 11. पृ० 621
18. वही, 1, 2. 6, पृ० 24
19. चाणक्य नीति, 1. 6. पृ0–9
20. वहीं, 4. 15. पृ० 22
21. तस्मात्कोपं च कामं च व्यसनारम्भमात्मवान्। परित्यजेन्मूलहरं वृद्धसेवी जितेन्द्रियः।।
(कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 8, 129, 3, पृ० 701)